Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

Original Article

ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों का बिहार की कृषि संरचना पर प्रभाव (1765–1813)

एक संरचनात्मक एवं नीति-विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रीति कुमारी सिन्हा[1] डॉ० प्रीति रंजन[2]

[1]शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

[2]डॉ० प्रीति रंजन, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, एच० डी० जैन कॉलेज, आरा, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

Manuscript ID:
JRD -2026-180330
ISSN: 2230-9578

Volume 18
Issue 3(A)
Pp. 153-161
March- 2026
Submitted: 25 Feb. 2026
Revised: 05 Mar. 2026
Accepted: 15 Mar. 2026
Published: 31 Mar. 2026

सारांश

प्रस्तुत शोध-लेख 1765 से 1813 ई. के मध्य ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा लागू की गई भू-राजस्व नीतियों के बिहार की कृषि संरचना पर पड़े प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन का केंद्रीय तर्क यह है कि बिहार में औपनिवेशिक कृषि-संकट की जड़ें 1793 के स्थायी बंदोबस्त में नहीं, बल्कि 1765 से आरम्भ हुए नीतिगत हस्तक्षेपों में निहित हैं, एक ऐसी स्थापित धारणा को यह शोध सीधे चुनौती देता है। शोध प्रमाणित करता है कि दीवानी अधिकार (1765), वारेन हेस्टिंग्स की नीलामी-प्रणाली (1772) और स्थायी बंदोबस्त (1793) ने परस्पर मिलकर एक ऐसी संरचनात्मक व्यवस्था का निर्माण किया जो "Drain Theory" की पुष्टि करती है, अधिशेष स्थानीय अर्थव्यवस्था में पुनर्निवेशित नहीं हुआ, बल्कि ब्रिटिश व्यापारिक हितों को हस्तांतरित किया गया। पटना, शाहाबाद, चम्पारण और तिरहुत जिलों के "District Gazetteers", राजस्व अभिलेखों और रणजीत गुहा, रोमेश चंद्र दत्त, इरफ़ान हबीब *के द्वितीयक स्रोतों पर आधारित यह अध्ययन बिहार को एक स्वतंत्र अकादमिक इकाई के रूप में विश्लेषित करता है।*

मुख्य शब्द: *औपनिवेशिक बिहार, भू-राजस्व नीति, स्थायी बंदोबस्त, किसान शोषण, धन-निकासी सिद्धांत, वाणिज्यीकरण, दीवानी अधिकार, संरचनात्मक असमानता*

1. प्रस्तावना

1.1 शोध-समस्या

भारत के औपनिवेशिक इतिहास में कृषि-परिवर्तन की चर्चा प्रायः बंगाल प्रेसीडेंसी के संदर्भ में की जाती है। इस केंद्रीयता के कारण बिहार जैसे उस क्षेत्र की विशिष्टताएँ अकादमिक विमर्श में हाशिए पर रह जाती हैं जो न केवल एक प्रमुख कृषि-क्षेत्र था, बल्कि ब्रिटिश राजस्व प्रयोगों का प्रत्यक्ष भूभाग भी था। 1765 में जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को बिहार, बंगाल और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई, तो वहाँ की कृषि-व्यवस्था पर जो संरचनात्मक दबाव बना, उसका दीर्घकालिक प्रभाव आज भी गहन शोध की माँग करता है। समस्या यह है कि अधिकांश राष्ट्रीय स्तर के अध्ययन बंगाल पर केंद्रित हैं। बिहार की क्षेत्रीय कृषि-संरचना, उसकी गंगा-मैदानी विशेषता, मगध-तिरहुत-चम्पारण जैसे उपक्षेत्रीय भेद, जाति-आधारित भूमि-प्रणाली और अर्ध-जनजातीय सामाजिक ताने-बाने, पर स्वतंत्र संरचनात्मक विश्लेषण अत्यंत सीमित है। यह शोध-रिक्तता इस अध्ययन की प्रेरणा है।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)
This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International Public License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work noncommercially, as long as appropriate credit is given and the new creations ae licensed under the idential terms.

Address for correspondence:
प्रीति कुमारी सिन्हा, शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

How to cite this article:
सिन्हा, . प्रीति. कुमारी., & रंजन, . प्रीति. (2026). ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों का बिहार की कृषि संरचना पर प्रभाव (1765–1813) एक संरचनात्मक एवं नीति-विश्लेषणात्मक अध्ययन. Journal of Research & Development, 18(3(A)), 153–161. https://doi.org/10.5281/zenodo.19638989

Quick Response Code:

Website:
https://jrdrvb.org/
DOI:
10.5281/zenodo.19638989

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

1.2 शोध-अंतराल

अधिकांश अध्ययन बंगाल पर केंद्रित हैं। बिहार के विशिष्ट कृषि-संरचनात्मक परिवर्तन — जिसमें उसकी अर्ध-जनजातीय भूमि-प्रणाली, गंगा के मैदानी क्षेत्र की विशिष्टता और मगध-तिरहुत जैसे उपक्षेत्रीय भिन्नताएँ शामिल हैं, पर स्वतंत्र शोध अत्यंत सीमित है।

रोमेश चंद्र दत्त, बिपन चंद्र जैसे विद्वानों ने अखिल भारतीय संदर्भ में ब्रिटिश नीतियों की आलोचना की है, किंतु बिहार को एक स्वतंत्र अध्ययन-इकाई के रूप में विरले ही स्वीकार किया गया। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अकादमिक जगत में यह धारणा प्रचलित रही है कि बिहार में कृषि-संकट 1793 के स्थायी बंदोबस्त से आरम्भ हुआ। यह शोध-लेख इस धारणा को एक केंद्रीय चुनौती के रूप में प्रस्तुत करता है और प्रमाणित करता है कि संकट की संरचनात्मक नींव 1765–1793 के नीतिगत प्रयोगों में ही निर्मित हो चुकी थी।

1.3 शोध-प्रश्न

इस अध्ययन में निम्नलिखित चार प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास किया गया है:

(1) 1765 से 1793 की नीतियों ने बिहार की कृषि-संरचना को किस प्रक्रिया से परिवर्तित किया और इसके क्षेत्र-विशेष प्रमाण क्या हैं? (2) स्थायी बंदोबस्त ने किसान-जमींदार सम्बन्ध को किस हद तक कानूनी रूप से पुनर्परिभाषित किया? (3) क्या ये कृषि-परिवर्तन प्राकृतिक आर्थिक विकास थे अथवा नीति-निर्मित संरचनात्मक हस्तक्षेप? (4) बिहार में वाणिज्यिक कृषि के विस्तार ने खाद्य-सुरक्षा और किसान-जीवन को किस रूप में प्रभावित किया?

1.4 थीसिस स्टेटमेंट

यह शोध उस स्थापित धारणा को सीधे चुनौती देता है कि बिहार में कृषि-संकट 1793 से प्रारम्भ हुआ। शोध यह प्रमाणित करता है कि संकट की संरचनात्मक नींव 1765–1793 के प्रयोगों में ही निहित थी, दीवानी, नीलामी-प्रणाली और जमींदारी के बाजारीकरण ने मिलकर एक ऐसी औपनिवेशिक कृषि-व्यवस्था का निर्माण किया जो किसान को भूमि से, उत्पाद को बाजार से और जीविका को खाद्यान्न से अलग करती थी। 1793 का स्थायी बंदोबस्त इस प्रक्रिया की पराकाष्ठा था, उसका आरम्भ नहीं।

2. साहित्य समीक्षा

ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों के प्रभाव पर हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में व्यापक शोध उपलब्ध है, किंतु अधिकांश ग्रंथ राष्ट्रीय अथवा बंगाल-केंद्रित दृष्टिकोण से लिखे गए हैं। प्रस्तुत समीक्षा यह भी दर्शाती है कि प्रत्येक विद्वान की सीमाएँ किस प्रकार इस शोध की आवश्यकता को और पुष्ट करती हैं।

2.1 रोमेश चंद्र दत्त — आर्थिक शोषण का दृष्टिकोण

रोमेश चंद्र दत्त की “The Economic History of India (1901-1903)” औपनिवेशिक कृषि-नीति की आलोचना का प्रारम्भिक और प्रभावशाली प्रयास है। दत्त का मुख्य तर्क है कि ब्रिटिश राजस्व माँग अत्यधिक और अनम्य थी, जिसने भारतीय किसान को निर्धनता के चक्र में धकेला। उनका यह भी तर्क है कि राजस्व की मौद्रिक माँग ने किसान को अनिवार्यतः बाजार में बेचने के लिए बाध्य किया, एक महत्त्वपूर्ण अवलोकन जो इस शोध के लिए सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है। किंतु दत्त का विश्लेषण मुख्यतः बंगाल और मद्रास पर केंद्रित है और बिहार की उपक्षेत्रीय विभिन्नताओं को वे पर्याप्त महत्त्व नहीं देते, यह एक महत्त्वपूर्ण सीमा है जिसे यह शोध संबोधित करता है।

2.2 बिपन चंद्र — Drain Theory और औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था

बिपन चंद्र ने “Rise and Growth of Economic Nationalism in India” में दिखाया कि ब्रिटिश नीतियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था के उपनिवेशीकरण का सुनियोजित उपकरण थीं। उनका “Drain Theory” के माध्यम से विश्लेषण इस शोध के लिए विशेष महत्त्व रखता है: बिहार का अफीम, नील और चीनी ब्रिटिश निर्यात व्यापार के प्रमुख घटक थे, फिर भी इनका उत्पादन-लाभ स्थानीय किसानों तक नहीं पहुँचा, यह “Drain Theory” का क्षेत्रीय प्रमाण है। चंद्रा भी बिहार को उप-क्षेत्रीय अध्ययन-इकाई के रूप में नहीं देखते, जो इस शोध की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

2.3 इरफ़ान हबीब **— भूमि-संरचना और वर्ग-विश्लेषण**

इरफ़ान हबीब ने "The Agrarian System of Mughal India" में मुग़ल कालीन भूमि-संरचना का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया और दर्शाया कि मुग़ल व्यवस्था में 'जमींदार' मूलतः राजस्व-अधिकारी था, भूमि का स्वामी नहीं। यह स्थापना इस शोध के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, 1793 का स्थायी बंदोबस्त जब जमींदार को स्थायी भू-स्वामी बनाता है, तो यह मुग़ल परम्परा से एक क्रांतिकारी विच्छेद है, न कि निरंतरता। हबीब का वर्ग-विश्लेषण इस शोध के सैद्धांतिक आधार को समृद्ध करता है।

2.4 रणजीत गुहा **— Subaltern Studies और 'Rule of Property'**

रणजीत गुहा की "A Rule of Property for Bengal (1963)" इस शोध के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक है। गुहा का तर्क है कि स्थायी बंदोबस्त एक 'utopian' प्रयोग था, अंग्रेजी संपत्ति-दर्शन को भारतीय भूमि-संरचना पर आरोपित करने की कोशिश। यह स्थापना बिहार के संदर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यहाँ की अर्ध-जनजातीय और सामुदायिक भूमि-प्रणाली इस 'individual property' की अवधारणा से और भी असंगत थी। गुहा का "Subaltern" दृष्टिकोण बिहार के किसान के अनुभव को समझने में मूल्यवान है, यद्यपि उनका भौगोलिक फोकस बंगाल ही रहा है।

2.5 क्षेत्रीय अध्ययनों की सीमाएँ और इस शोध की स्थिति

पटना जिला गज़ेटियर (O'Malley, 1907), तिरहुत जिला गज़ेटियर (1908), शाहाबाद जिला गज़ेटियर (1906) और के. के. दत्त के बिहार और उड़ीसा जैसे कार्य बिहार की स्थानीय कृषि-दशाओं के प्रमाण देते हैं, किंतु इनका दृष्टिकोण प्रशासनिक है, न संरचनात्मक-विश्लेषणात्मक। यह शोध-लेख इन प्राथमिक स्रोतों को उपर्युक्त सैद्धांतिक ढाँचों के साथ संयोजित कर बिहार को एक स्वतंत्र अकादमिक इकाई के रूप में विश्लेषित करता है, यही इसका मौलिक योगदान है।

3. सैद्धांतिक ढाँचा

इस शोध-लेख में तीन परस्पर पूरक सैद्धांतिक दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये सिद्धांत केवल सैद्धांतिक प्रस्तुति के रूप में नहीं, बल्कि विश्लेषण के सक्रिय उपकरणों के रूप में इस शोध के प्रत्येक खंड में प्रयुक्त हैं।

3.1 औपनिवेशिक राजनीतिक-अर्थव्यवस्था

यह दृष्टिकोण राजस्व-नीतियों को ब्रिटिश पूँजीवाद की आवश्यकताओं के अनुरूप भारतीय अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन के उपकरण के रूप में देखता है। कार्ल मार्क्स का 'Primitive Accumulation' का विचार, जिसका भारतीय संदर्भ में इरफ़ान हबीब ने उपयोग किया, इस ढाँचे की बौद्धिक नींव है। बिहार के संदर्भ में यह सिद्धांत प्रमाणित करता है कि किसान की भूमि से बेदखली और जमींदारी का बाजारीकरण 'primitive accumulation' की प्रक्रिया के अंग थे।

3.2 धन-निकासी सिद्धांत

दादाभाई नौरोजी का "Drain Theory" बिहार के संदर्भ में इस रूप में क्रियाशील था: अफीम एजेंसी (पटना, गया, शाहाबाद) किसानों से 'दस्तक मूल्य' पर अफीम खरीदती थी जो बाजार मूल्य से सदैव कम था। यह अंतर प्रत्यक्ष धन-निकासी का एक प्रक्रिया था। इसी प्रकार, नील और चीनी का निर्यात-मूल्य स्थानीय उत्पादकों को नहीं मिलता था, अधिशेष ब्रिटिश व्यापारिक नेटवर्क के माध्यम से बाहर चला जाता था। यह स्थिति "Drain Theory" को पुष्ट करती है: अधिशेष स्थानीय अर्थव्यवस्था में पुनर्निवेशित नहीं हुआ।

3.3 सबाल्टर्न अध्ययन

रणजीत गुहा के "Subaltern Studies" पद्धति के अनुसार, इतिहास को 'नीचे से' देखना अनिवार्य है। इस शोध में बिहार के किसान, खेतिहर मजदूर, आदिवासी और दलित कृषक की स्थिति को केवल नीतिगत परिणामों के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित अनुभव के रूप में समझने का प्रयास किया गया है। 1855 का संथाल विद्रोह और चम्पारण में निलहे अत्याचार इसी "Subaltern" अनुभव के ऐतिहासिक प्रमाण हैं जो दीर्घकालिक औपनिवेशिक शोषण की परिणति थे।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

4. मुख्य विश्लेषण

4.1 1765–1793: प्रारम्भिक औपनिवेशिक हस्तक्षेप और कृषि-अस्थिरता — संकट की संरचनात्मक नींव

(क) दीवानी अधिकार और दोहरा शासन (1765–1772): जब राजस्व प्रशासन से टूटा

1765 में मुग़ल सम्राट शाह आलम द्वितीय से प्राप्त दीवानी ने ब्रिटिश कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राजस्व-संग्रह का अधिकार दिया, किंतु प्रशासनिक दायित्व नहीं। रॉबर्ट क्लाइव के 'दोहरे शासन' (Dual Government) में दीवानी कंपनी के पास और निजामत नवाब के पास रही। यही असंतुलन बिहार में कृषि-संकट का प्रथम संरचनात्मक कारण बना।

तर्क : दोहरे शासन ने बिहार की कृषि-व्यवस्था को एक ऐसी स्थिति में धकेला जहाँ राजस्व-संग्रह का अधिकार तो था, किंतु कृषि-विकास की जिम्मेदारी किसी की नहीं थी।

प्रमाण : पटना जिला गज़ेटियर (O'Malley, 1907) के अनुसार, 1765–1772 की अवधि में पटना और गया जिलों में राजस्व-ठेके का स्वरूप अत्यंत अनियमित था, प्रत्येक वर्ष सर्वाधिक बोली लगाने वाले को भूमि का प्रबंधन सौंपा जाता था, चाहे उसकी कृषि में कोई रुचि हो या न हो। इस काल की सबसे भयावह परिणति 1770 का महाअकाल था जिसमें बिहार की अनुमानतः एक-तिहाई जनसंख्या नष्ट हुई, फिर भी बंगाल राजस्व प्रतिवेदन दर्शाते हैं कि राजस्व-माँग में कोई कमी नहीं की गई।

व्याख्या : यह तथ्य “Colonial Political Economy” के सिद्धांत को पुष्ट करता है: कंपनी की दृष्टि में बिहार की कृषि-व्यवस्था एक जीवित सामाजिक तंत्र नहीं, बल्कि एक राजस्व-स्रोत थी। अकाल में भी राजस्व-माँग की अनम्यता यह प्रमाणित करती है कि यह नीति-निर्मित संरचनात्मक हस्तक्षेप था, न कि प्रशासनिक अनियमितता।

(ख) वारेन हेस्टिंग्स की नीलामी-प्रणाली (1772–1786): जमींदारी का बाजारीकरण

1772 में गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने दोहरे शासन को समाप्त कर पंचवर्षीय ठेका-प्रणाली लागू की जिसमें भूमि का ठेका खुली नीलामी में दिया जाता था। यह नीलामी-प्रणाली बिहार में जमींदारी संस्था के बाजारीकरण का पहला और निर्णायक चरण था।

तर्क : नीलामी-प्रणाली ने एक नए वर्ग का निर्माण किया, 'नए जमींदार' जो परम्परागत कृषि-सम्बन्ध से कटे हुए थे और जिनकी एकमात्र प्रेरणा अधिकतम राजस्व-वसूली थी। यह परिवर्तन 1793 के स्थायी बंदोबस्त से पहले ही संरचनात्मक असमानता का बीजारोपण कर चुका था।

प्रमाण : पटना कलेक्टरेट अभिलेख और बंगाल राजस्व प्रतिवेदन (1772–1790) दर्शाते हैं कि 1770 के दशक से 1790 के दशक के बीच बिहार में जमींदारी परिवर्तन की दर बंगाल से भी अधिक थी। मगध और तिरहुत जिलों में पारम्परिक जमींदार नीलामी में बाहरी बोलीदाताओं, शहरी व्यापारियों, महाजनों और कंपनी के मध्यवर्तियों, से पराजित होने लगे। तिरहुत जिला गज़ेटियर (1908) में यह उल्लेख मिलता है कि इस काल में 'absentee landlordism' की प्रवृत्ति तिरहुत में विशेष रूप से उभरी।

व्याख्या : “Subaltern Studies” के परिप्रेक्ष्य से देखें तो यह परिवर्तन उस सामाजिक संरचना को नष्ट कर रहा था जिसमें जमींदार और किसान के बीच, चाहे शोषणकारी ही सही, एक परम्परागत सामाजिक बंधन था। नए 'absentee' जमींदारों के आगमन से यह बंधन टूट गया और किसान की सुरक्षा और कम हो गई, 1793 के बाद की कानूनी असुरक्षा की नींव यहीं रखी गई।

तालिका 1: बिहार में ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों का कालक्रम, प्रक्रिया और प्रभाव

वर्ष	नीति / घटना	प्रक्रिया (किस प्रकार)	बिहार पर प्रभाव
1765	दीवानी अधिकार प्राप्ति	राजस्व-संग्रह का अधिकार बिना प्रशासनिक जिम्मेदारी के	भूमि प्रबंधन में अराजकता; 1770 का महाअकाल
1772	वारेन हेस्टिंग्स सुधार	पंचवर्षीय नीलामी-ठेका; बाहरी बोलीदाताओं का प्रवेश	परम्परागत जमींदारी का विस्थापन; नए 'absentee'

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

			जमींदार
1793	स्थायी बंदोबस्त	जमींदार = स्थायी कानूनी भू-स्वामी; मौद्रिक राजस्व निश्चित	किसान असुरक्षित; बेदखली सामान्य प्रक्रिया बनी
1793–1813	व्यावसायिक कृषि विस्तार	अफीम एजेंसी, नील ठेका, दस्तक मूल्य प्रणाली	खाद्यान्न उत्पादन में कमी; ऋण-निर्भरता में वृद्धि

स्रोत: पटना जिला गज़ेटियर (1907), बंगाल राजस्व प्रतिवेदन (1793–1813), दत्त (1901), हबीब (1963) के आधार पर लेखक द्वारा संकलित

4.2 स्थायी बंदोबस्त (1793): संरचनात्मक असमानता का संस्थागतकरण

(क) नीति की प्रकृति: अंग्रेजी संपत्ति-दर्शन का भारतीय भूमि पर आरोपण

1793 में लॉर्ड कार्नवालिस द्वारा लागू स्थायी बंदोबस्त की मूल संरचना तीन स्तम्भों पर टिकी थी: जमींदार को स्थायी भूमि-स्वामी के रूप में मान्यता, राज्य के साथ राजस्व की स्थायी दर का निर्धारण, और राजस्व न देने पर जमींदारी की नीलामी।

तर्क : यह नीति, रणजीत गुहा के शब्दों में, एक 'rule of property' स्थापित करने का प्रयास थी, वह संपत्ति-दर्शन जो अंग्रेजी “Common Law” में निहित था। किंतु यह प्रयोग बिहार में बंगाल से भी अधिक विसंगत था, क्योंकि यहाँ की सामुदायिक भूमि-व्यवस्था और अर्ध-जनजातीय संरचना 'individual property' की अवधारणा से और भी असंगत थी।

प्रमाण : शाहाबाद जिला गज़ेटियर (Edye, 1906) दर्शाता है कि शाहाबाद जिले में, जो बिहार का एक उर्वर कृषि-क्षेत्र था, 1793 के पश्चात जमींदारों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, किंतु इनमें से अधिकांश 'absentee landlords' थे जो पटना या कलकत्ता में निवास करते थे। के. के. दत्त के बिहार और उड़ीसा के अध्ययन में यह स्पष्ट है कि 1800–1815 के बीच बिहार में 'khatian' (भूमि-रिकार्ड) में जमींदारी भूमि के विस्तार और रैयती भूमि के संकुचन की प्रवृत्ति दर्ज है।

व्याख्या : यह “Colonial Political Economy” के सिद्धांत की पुष्टि करता है: स्थायी बंदोबस्त 'primitive accumulation' का कानूनी औजार था। मुग़ल व्यवस्था में जहाँ जमींदार राजस्व-अधिकारी था (हबीब, 1963), वहाँ अब वह भूमि का निरपेक्ष स्वामी बन गया, यह परिवर्तन ऐतिहासिक दृष्टि से क्रांतिकारी और किसान के लिए विनाशकारी था।

(ख) किसान की कानूनी स्थिति: असुरक्षा का औपचारिकीकरण

स्थायी बंदोबस्त में किसान को कोई कानूनी गारंटी नहीं दी गई। जमींदार किसान को बेदखल कर सकता था, और इस बेदखली के विरुद्ध किसान के पास कोई कानूनी उपाय नहीं था।

तर्क : स्थायी बंदोबस्त ने तीन प्रक्रिया से किसान को कमजोर किया: (1) कानूनी अधिकारों की अनुपस्थिति ने बेदखली को एक सामान्य प्रशासनिक प्रक्रिया बना दिया, (2) मौद्रिक राजस्व की अनम्य माँग ने अकाल और फसल-नाश की स्थिति में भी ऋण-लेने की बाध्यता उत्पन्न की, (3) शाहाबाद और चम्पारण जैसे जिलों में नकदी-फसल उत्पादन के लिए जमींदार द्वारा किसान का विस्थापन बढ़ा।

प्रमाण : बंगाल राजस्व प्रतिवेदन (1812-13) में बिहार के कई जिलों में भूमि-गिरवी के उल्लेख मिलते हैं। ब्याज-दरें प्रायः 24% से 36% वार्षिक थीं (पटना जिला गज़ेटियर, 1907)। 1822 के विनियम और 1859 के “Rent Act” तक किसान के पास कोई कानूनी सुरक्षा नहीं थी, और ये प्रयास भी 1793 की संरचनात्मक विषमता को दूर नहीं कर सके।

व्याख्या : “Subaltern Studies” के दृष्टिकोण से, यह किसान की 'agency' का व्यवस्थित उन्मूलन था। बिहार में किसान-विद्रोहों की श्रृंखला — 1781 का रंगपुर विद्रोह, 1855 का संथाल हूल और अंततः 1917–18 का चम्पारण सत्याग्रह, इसी दीर्घकालिक कानूनी असुरक्षा की ऐतिहासिक अभिव्यक्ति है।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

4.3 कृषि-संरचना में परिवर्तन: जीविका से बाजार की ओर

(क) नकदी फसलों का विस्तार और Drain Theory का क्षेत्रीय प्रमाण

बिहार में तीन नकदी फसलें औपनिवेशिक काल में विशेष महत्त्व रखती थीं — अफीम (पटना, गया, शाहाबाद), नील (तिरहुत, सारण) और गन्ना/चीनी। इनका विस्तार न केवल कृषि-विविधता के लिए, बल्कि खाद्य-सुरक्षा और "Drain Theory" की दृष्टि से भी विनाशकारी था।

तर्क : अफीम एजेंसी का 'दस्तक मूल्य' (fixed price) सदैव बाजार मूल्य से कम था। यह अंतर प्रत्यक्ष धन-निकासी का प्रक्रिया था जो "Drain Theory" को बिहार में ठोस रूप में प्रमाणित करता है।

प्रमाण : पटना की अफीम एजेंसी (स्थापना 1773) किसानों से निश्चित 'dastuk price' पर अफीम खरीदती थी। "Report of the Fifth Report on the Affairs of the East India Company (1812)" में यह स्वीकार किया गया है कि अफीम-उत्पादन किसान के लिए लाभकारी नहीं था। चम्पारण में निलहे (indigo planters) किसानों को बाध्यकारी नील-अनुबंध (tinkathia system) में जकड़ते थे, तिरहुत जिला गज़ेटियर (1908) इस प्रणाली के विस्तृत विवरण से भरा है। इस व्यवस्था में किसान की तीन कट्ठा भूमि पर नील की खेती अनिवार्य थी, चाहे भाव कितना भी कम हो।

व्याख्या : यह स्थिति Drain Theory को पुष्ट करती है: बिहार का अधिशेष, अफीम, नील, चीनी, स्थानीय अर्थव्यवस्था में पुनर्निवेशित नहीं हुआ, बल्कि ब्रिटिश व्यापारिक नेटवर्क के माध्यम से बाहर हस्तांतरित किया गया। इससे बिहार का ग्रामीण क्षेत्र एक 'extractive economy' में परिवर्तित हो गया।

(ख) आत्मनिर्भरता से बाजार-निर्भरता का संक्रमण

स्थायी बंदोबस्त की एक महत्त्वपूर्ण अनदेखी परिणति यह थी कि मौद्रिक राजस्व की स्थिर माँग ने किसान को बाजार में बेचने के लिए बाध्य किया। मुग़ल काल में राजस्व प्रायः उपज का अनुपात होता था और खराब फसल में कभी-कभी राहत मिलती थी। 1793 के पश्चात राजस्व की मौद्रिक माँग निश्चित और अनम्य थी।

तर्क : इस अनम्यता ने एक ऐसा दुष्चक्र निर्मित किया: अकाल → राजस्व-भार → जमींदार का दबाव → किसान का ऋण → महाजन पर निर्भरता → भूमि-गिरवी → अंततः बेदखली। यह दुष्चक्र 1793 से पहले भी था, किंतु स्थायी बंदोबस्त ने इसे कानूनी और संरचनात्मक रूप से स्थायी बना दिया।

प्रमाण : बंगाल राजस्व प्रतिवेदन (1812-13) में बिहार के कई जिलों में भूमि-गिरवी के स्पष्ट उल्लेख हैं। ब्याज-दरें 24%–36% वार्षिक थीं। विलियम विल्सन हंटर के "Statistical Account of Bengal (1877)" में बिहार के मगध क्षेत्र में ग्रामीण ऋण-संरचना के विस्तृत आँकड़े हैं जो इस प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं।

व्याख्या : "Colonial Political Economy" के सिद्धांत के अनुसार, यह संक्रमण, जीविका से बाजार-अर्थव्यवस्था की ओर, कोई 'natural economic development' नहीं था, बल्कि नीति-निर्मित संरचनात्मक हस्तक्षेप था जो ब्रिटिश पूँजीवाद की माँग के अनुरूप बिहार की कृषि को पुनर्गठित कर रहा था।

तालिका 2: बिहार में कृषि-संरचना का तुलनात्मक विश्लेषण (पूर्व-औपनिवेशिक बनाम 1793 के पश्चात)

पहलू	पूर्व-औपनिवेशिक स्थिति	1793 के बाद की स्थिति
भूमि स्वामित्व	सामुदायिक / गाँव आधारित; जमींदार = राजस्व-अधिकारी (हबीब, 1963)	जमींदार = कानूनी भू-स्वामी; किसान असुरक्षित किरायेदार
कृषि उद्देश्य	जीविका एवं स्थानीय उपभोग	बाजार एवं ब्रिटिश निर्यात हेतु उत्पादन
फसल प्रकार	खाद्यान्न प्रधान (धान, गेहूँ, दलहन)	नकदी फसल: अफीम (पटना), नील

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

		(चम्पारण), चीनी
राजस्व प्रणाली	लचीली / फसल के अनुपात में; खराब फसल में राहत संभव	स्थिर मौद्रिक माँग; अनम्य; अकाल में भी माफी नहीं
ऋण-संरचना	सीमित, गाँव आधारित; अगली फसल तक चुकाने योग्य	महाजन-केंद्रित; 24–36% ब्याज; भूमि-गिरवी सामान्य
किसान की स्थिति	परम्परागत अधिकार-सम्पन्न; सामाजिक सुरक्षा-जाल उपलब्ध	कानूनी असुरक्षा; बेदखली सामान्य; ऋणग्रस्त

स्रोत: हबीब (1963), दत्त (1901), पटना जिला गज़ेटियर (1907), शाहाबाद जिला गज़ेटियर (1906), बंगाल राजस्व अभिलेख

4.4 किसान की स्थिति: ऋणग्रस्तता, बेदखली और प्रतिरोध

(क) ऋण-तंत्र का विस्तार

1793 के पश्चात बिहार में ग्रामीण ऋण-संरचना में गुणात्मक परिवर्तन आया। पहले ऋण मुख्यतः बीज, पशु या औजार के लिए लिया जाता था। स्थायी बंदोबस्त के बाद ऋण का उद्देश्य बदल गया, अब किसान राजस्व-अदायगी के लिए ऋण लेने लगे।

तर्क : स्थायी बंदोबस्त की मौद्रिक और अनम्य राजस्व-माँग ने महाजन को ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक अनिवार्य घटक बना दिया। यह न कोई स्वाभाविक विकास था, न बाजार की 'free choice' यह नीति-निर्मित परनिर्भरता थी।

प्रमाण : बंगाल राजस्व प्रतिवेदन (1812-13) में पटना और गया जिलों में भूमि-गिरवी के स्पष्ट उल्लेख हैं। विलियम विल्सन हंटर के “Statistical Account (1877)” में बिहार के मगध क्षेत्र में ब्याज-दर 24–36% वार्षिक दर्ज है। के. के. दत्त के अध्ययन में 1800–1815 के मध्य 'khatian' में जमींदारी भूमि के विस्तार और रैयती भूमि के संकुचन की प्रवृत्ति स्पष्ट दर्ज है।

व्याख्या : “Drain Theory” के अनुसार, यह ऋण-तंत्र भी एक प्रकार का अंतःप्रवाह (internal drain) था, किसान का अधिशेष महाजन के माध्यम से ब्रिटिश और शहरी पूँजी में हस्तांतरित होता था, स्थानीय कृषि-अर्थव्यवस्था में पुनर्निवेशित नहीं।

(ख) बेदखली: कानूनी और आर्थिक — Subaltern अनुभव का दस्तावेज़

बिहार में दो प्रकार की बेदखली थी: राजस्व-न-अदायगी पर जमींदार द्वारा किसान को भूमि से हटाना, और नकदी-फसल उत्पादन के लिए जमींदार द्वारा खेतों के विस्तार में किसान का विस्थापन।

प्रमाण : शाहाबाद जिला गज़ेटियर (1906) में यह उल्लेख है कि 1793–1813 की अवधि में शाहाबाद जिले में नकदी-फसल उत्पादन के लिए बड़े पैमाने पर किसान-विस्थापन हुआ। चम्पारण में 'tinkathia system' के तहत नील की बाध्यकारी खेती के कारण किसानों का विस्थापन, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण 1917 के चम्पारण सत्याग्रह की पृष्ठभूमि में मिलता है, इसी दीर्घकालिक प्रक्रिया की परिणति था।

व्याख्या : Subaltern Studies के परिप्रेक्ष्य में, बिहार के किसान का प्रतिरोध, 1855 का संथाल हूल, 1857 में बिहार में जनजातीय और किसान भागीदारी, 1917-18 का चम्पारण आंदोलन, इसी संरचनात्मक शोषण की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया थे। ये विद्रोह केवल 'spontaneous' नहीं थे, बल्कि 1765 से निर्मित हो रहे संरचनात्मक दबाव का विस्फोट थे।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-लेख ने यह स्थापित किया है कि 1765 से 1813 के मध्य बिहार में ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों ने एक ऐसी कृषि-संरचना का निर्माण किया जो परम्परागत जीविका-आधारित अर्थव्यवस्था को बाजार-आधारित और शोषण-उन्मुख प्रणाली में बदल देती थी। शोध के चार प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

प्रथम: यह शोध उस स्थापित धारणा को सीधे चुनौती देता है कि बिहार में कृषि-संकट 1793 से आरम्भ हुआ। प्रमाण यह है कि 1765 की दीवानी प्राप्ति के तुरंत बाद 1770 का महाअकाल हुआ जिसमें बिहार की अनुमानतः एक-तिहाई जनसंख्या नष्ट हुई, और राजस्व-माँग फिर भी अपरिवर्तित रही। 1772 की नीलामी-प्रणाली ने परम्परागत जमींदारी को विस्थापित कर दिया। अतः संकट की संरचनात्मक नींव 1765–1793 के नीतिगत प्रयोगों में ही निर्मित हो चुकी थी; 1793 इसकी पराकाष्ठा था, आरम्भ नहीं।

द्वितीय: स्थायी बंदोबस्त ने जमींदारी को एक कानूनी संस्था के रूप में स्थापित कर किसान को न केवल आर्थिक बल्कि कानूनी रूप से भी असुरक्षित बना दिया। यह "Colonial Political Economy" के सिद्धांत की पुष्टि करता है: यह 'primitive accumulation' का कानूनी उपकरण था।

तृतीय: बिहार में अफीम एजेंसी (पटना, गया, शाहाबाद), नील-ठेका (चम्पारण, तिरहुत) और 'दस्तक मूल्य' की प्रणाली ने "Drain Theory" को क्षेत्रीय स्तर पर प्रमाणित किया, बिहार का कृषि-अधिशेष स्थानीय अर्थव्यवस्था में पुनर्निवेशित नहीं हुआ।

चतुर्थ: "Subaltern Studies" के दृष्टिकोण से, बिहार के किसान का प्रतिरोध, संथाल हूल (1855), 1857 की भागीदारी, चम्पारण सत्याग्रह (1917-18) — 1765 से निर्मित होते संरचनात्मक दबाव की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया थी। ये घटनाएँ Subaltern 'agency' की अभिव्यक्ति हैं।

इस अध्ययन का व्यापक निहितार्थ यह है कि औपनिवेशिक कृषि-नीतियों का मूल्यांकन केवल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं, बल्कि क्षेत्रीय विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। बिहार, अपनी गंगा-मैदानी भौगोलिक विशेषता, जाति-आधारित भूमि-संरचना और अर्ध-जनजातीय सामाजिक ताने-बाने के साथ — एक स्वतंत्र विश्लेषणात्मक इकाई है जो बंगाल-केंद्रित विमर्श से परे एक नया अध्याय माँगती है।

5.1 मौलिक योगदान और भावी शोध की संभावनाएँ

इस शोध का मौलिक योगदान तीन स्तरों पर है: (1) बिहार को एक स्वतंत्र अकादमिक इकाई के रूप में विश्लेषित करना, (2) 'संकट 1793 से आरम्भ हुआ' की स्थापित धारणा को प्रमाण-सहित चुनौती देना, (3) Drain Theory, Colonial Political Economy और Subaltern Studies को बिहार के ठोस क्षेत्रीय प्रमाणों से संयोजित करना।

भावी शोध के लिए निम्नलिखित दिशाएँ सुझाई जाती हैं: (1) पटना, शाहाबाद, चम्पारण और तिरहुत जिलों के राजस्व अभिलेख पर आधारित सूक्ष्म-क्षेत्रीय तुलनात्मक अध्ययन; (2) 1813 से 1857 की अवधि में किसान-आंदोलनों का बिहार-केंद्रित विश्लेषण; (3) जाति और भूमि-अधिकार के सम्बन्ध का तुलनात्मक अध्ययन; (4) पारिस्थितिक इतिहास के दृष्टिकोण से नकदी फसलों के भूमि-उपयोग और पर्यावरणीय प्रभाव का अध्ययन।

संदर्भ-सूची

प्राथमिक स्रोत

1. बंगाल राजस्व प्रतिवेदन (1793–1813)
   इंडिया ऑफिस रिकॉर्ड्स, ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन।
2. हंटर, डब्ल्यू. डब्ल्यू.
   बंगाल का सांख्यिकीय विवरण। लंदन: ट्रूब्नर एंड कंपनी, 1877।
3. ओ'मैली, एल. एस. एस.
   पटना जिला गज़ेटियर। कलकत्ता: बंगाल सचिवालय प्रेस, 1907।
4. ओल्डहम, डब्ल्यू. बी.
   तिरहुत जिला गज़ेटियर। कलकत्ता: बंगाल सचिवालय प्रेस, 1908।
5. एड्ये, ई. एच. एच.
   शाहाबाद जिला गज़ेटियर। कलकत्ता: बंगाल सचिवालय प्रेस, 1906।

Journal of Research and Development
A Multidisciplinary International Level Referred and Double Blind Peer Reviewed, Open Access
ISSN : 2230-9578 | Website: https://jrdrvb.org Volume-18, Issue-3(A)| March-2026

6. ईस्ट इंडिया कंपनी के मामलों पर पाँचवीं रिपोर्ट
हाउस ऑफ कॉमन्स, 1812।

द्वितीयक स्रोत

1. चंद्र, बिपन
भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय और विकास। नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1966।
2. दत्ता, के. के.
बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, खंड–1। पटना: बिहार सरकार, 1957।
3. दत्त, आर. सी.
भारत का आर्थिक इतिहास, खंड–1: प्रारंभिक ब्रिटिश शासन के अधीन। लंदन: केगन पॉल, ट्रेंच, ट्रूब्नर एंड कंपनी, 1901।
4. गुहा, रणजीत
बंगाल के लिए संपत्ति का नियम: स्थायी बंदोबस्त की अवधारणा पर एक निबंध। पेरिस: माउटन एंड कंपनी, 1963।
5. हबीब, इरफान
मुगल भारत की कृषि व्यवस्था, 1556–1707। बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1963।
6. नौरोजी, दादाभाई
भारत में गरीबी और गैर-ब्रिटिश शासन। लंदन: स्वान सोननशाइन एंड कंपनी, 1901।
7. सिंह, ए. के.
औपनिवेशिक बिहार: भूमि, राजस्व और कृषि समाज। पटना: जनकी प्रकाशन, 1992।
8. स्टोक्स, एरिक
किसान और राज: औपनिवेशिक भारत में कृषि समाज और किसान विद्रोह पर अध्ययन। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978।
9. मिश्रा, बी. बी.
भारत का एकीकरण और विभाजन। दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1976।
10. चौधरी, राधाकृष्ण
बिहार के इतिहास के पृष्ठ। पटना: जनकी प्रकाशन, 1971।